PĀRŚVA FOUNDATION SERIES NO. 6

आनंदतिलक-कृत

आणंदा

(आनंद-गीत)

संपादक और अनुवादक

हरिवल्लभ भायाणी

डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक

पार्श्व इन्टरनेशनल शैक्षणिक और
शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान

अहमदाबाद

आनंदतिलक-कृत

आणंदा

(आनंद-गीत)

•

संपादक और अनुवादक

हरिवल्लभ भायाणी
डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी

आनंदतिलक-कृत

आणंदा

(आनंद-गीत)

संपादक और अनुवादक

हरिवल्लभ भायाणी

डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक

पार्श्व इन्टरनेशनल शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान

अहमदाबाद

१९९९

Ānandatilaka's

ĀṆAṀDĀ

[The Ānanda-song]

A lyrical Poem in Late Apabhraṁśa in the Jain spiritual-didactic tradition

Edited and translated by

H. C. Bhayani, Pritam Singvi

© **H. C. Bhayani**
P. Singhvi

First Edition 1999

Price : Rs. 20-00

Publisher : Dr. S. S. Singhvi
Managing Trustee
Pārśva Internation Educational and Research Foundation,
4-A, Ramya Apartment, Opp. Ketav Petrol Pump,
Polytechnic, Ambawadi, Ahmedabad-380015
Phone : 6562998

प्राप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोल, अहमदाबाद-३८० ००१
फोन : 5356692

Printed by : Krishna Graphics
Kirit H. Patel
966, Naranpura Old Village,
Ahmedabad-380 013 * (Phone : 7484393)

General Editor's Forword

One Part of the academic undertakings by the Pārśva Educational and Research Foundation is to Publish Jain texts that are unpublished so far and research studies in Jainism, Prakrit and allied Indological areas. Accordingly we are Publishing herewith Āṇaṁda edited by H.C. Bhayani and Pritam Singhvi.

We thank the Authors to make the work available for being published in this Series.

अनुक्रम

भूमिका	६
दोहे का भावार्थ का निर्देश	८
आणंदा : मूलपाठ : अनुवाद	१२-२१
टिप्पण	२२
दोहानुक्रमणिका	२४

भूमिका

आनंदतिलक-कृत "आणंदा" (आनंद-गीत) अपभ्रंश की गीतियों में एक श्रेष्ठ रचना है।

हमने डो. देवेन्द्रकुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित कृति तथा स्व. नाहटाजी से प्राप्त हस्तप्रत के आधार पर इसका संपादन किया है। शास्त्रीजी के अनुसार उन्होंने तीन हस्तप्रतों के आधार पर इसका सम्पादन किया था जो जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी के पाण्डुलिपि सर्वेक्षण विभाग से प्राप्त की थी।

४३ पद्यों की इस रचना का नाम 'आणंदा' है। जो कवि ने स्वयं (दोहा ४१) में बताया है।

विषय की दृष्टि से देखें तो यह रचना अध्यात्म से परिपूर्ण है। इसमें आत्मा और परमात्मा के भेद तथा रहस्य का प्रतिपादन किया गया है। प्रसंगतः बाह्य क्रिया-काण्ड का निषेध चित्त-शुद्धि एवं भाव-शुद्धि तथा गुरु की महत्ता, सहज समाधि का निरूपण और आत्मस्वभाव में अपने उपयोग को स्थिर करने का वर्णन किया गया है। रचनाकार ने सामान्यतः पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किए बिना सीधे सरल शब्दों में धार्मिक व आध्यात्मिक साधना का निर्देश किया है।

प्रथम शताब्दी के आचार्य कुन्दकुन्द देव से लेकर छठी शताब्दी के योगीन्द्र देव, देवसेन, श्रुतसागर और दसवीं शताब्दी के मुनि रामसिंह के 'पाहुडदोहा' में वर्णित एक दीर्घ परम्परा रचनाकाल के समय तक चली आ रही थी। कवि ने उसी रहस्यवादी परम्परा में योगी की आत्म-साधना का वर्णन किया है।

रचना लघु होने पर भी सारगभित है। इससे पता लगता है कि कवि को जैन धर्म व जैन दर्शन का गहन अध्ययन है। किन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञातं नहीं हो सका है। भाषा से यह पता लगता है कि रचनाकार भारत के पश्चिम-उत्तरप्रदेश दिल्ली-हरियाणा के निकटवर्ती क्षेत्र का रहा होगा। क्योंकि भाषा-रचना खड़ी बोली के अधिक निकट है और आचार्य हेमचन्द्र की भाषाके अनन्तर ही रची गई प्रतीत होती है। अतः अनुमानतः रचना-काल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध जान पडता है। 'आणंदा' पर 'दोहापाहुड' का पूरा प्रभाव है। आनंदतिलक ने बहुत से विचार, पदावलि आदि 'दोहापाहुड' से लिये हैं। 'दोहा पाहुड' में आत्मा आदि

के विषय में जो उपदेश दिया है वही आनंदतिलक ने अपने शब्दों में निबद्ध किया है । वैसे तो 'दोहापाहुड' भी इस परंपरा की पूर्ववर्ती कृतियों से संकलित किया हुआ जान पडता है ।

जैसा कि ऊपर कहा गया देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने तीन प्रतियों के आधार पर इस रचना का पाठ-संपादन किया है । रचना लोकप्रिय रही होगी, इसी कारण अनेक पाठभेद मिलते हैं—शब्दरूप, शब्द, चरण, पद्यसंस्था, पद्यक्रम यह सभी के विषय में । भवंरलाल पोल्याका ने पूरी सावधानी से सभी पाठभेद नोट किये हैं। बहुत से पाठांतर कर्त्ता-विभक्ति के रूप, उत्तम पुरुष के रूप, अनुस्वार, हकार इत्यादि के बारे में हैं । मूल की भाषा का उत्तरकालीन लेखकों द्वारा हुआ ऐसा परिवर्तन बहुत हस्तप्रतियों में सामान्य तौर पर देखने में आता है । हमने केवल अर्थभेद वाले कुछ महत्त्व के पाठांतर ही लक्ष्य में लिये हैं ।

पाठनिर्णय तथा कृति का नाम और कर्तृत्व के विषय में और अर्थघटन के कई एक स्थानों के बारे में असंमत होने के कारण हमें कृति का फिर से संपादन और अनुवाद किया है ।[१] इस के लिये हमें शास्त्री की सामग्री का और स्व. अगरचंद नाहटा से प्राप्त एक प्रति का उपयोग किया है ।[२] उनका हम ऋण स्वीकार करते हैं। आणंदतिलक और महाणंदी के समय और जीवन के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते हैं । भाषा का स्वरूप उत्तरकालीन अपभ्रंश है, प्रादेशिक भाषा का प्रभाव नहिवत् है, इस कारण हम मानते हैं कि रचना तेरहवीं शताब्दी से बाद की शायद न हो । विषय पदावलि, दोहा, छंद और भाषाशैली की दृष्टि से आनंदतिलक का 'आनंद-गीत', महाचन्द्र की कृति 'बारहक्खर कक्क' और लक्ष्मीचंद्र की कृति 'अणुपेहा' से मिलती जुलती है ।

---

१. वासुदे सिंहने इपने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (६४/१, सं. २०१६, पृ. ५६-६३) में प्रकाशित लेख में 'आणंदा' के कर्तृत्व आदि विषय में जो बात कही है वह कृति में दिये हुए विधानों को अच्छी तरह समजे बिना कही है । उन्होंने जिस हस्तप्रति को उपयोग में ली है, उसके सिवा अन्य प्रति में अच्छे पाठान्तर मिलते हैं ।

२. नाहटाजी ने एक पत्र में लिखा था । 'आणंदा की हमारे संग्रह की प्रचीनतम प्रति की नक़ल मूल प्रति से मिला कर भेज रहा हूँ ।'

दोहे का भावार्थ का निर्देश

१. सबके शरीर में चिदानन्द, सानन्द जिन रहते हैं।

२. आत्मा निरंजन शिव, परमानन्द है। कुदेव की पूजा नहीं करनी चाहिये। गुरु के बिना लोग अन्ध होते हैं।

३. अडसठ्ठ तीर्थों में घूमना निरर्थक है। घटस्थ देव को वन्दन करना चाहिये।

४. जब तक भीतर पाप मल भरा हुआ है तब तक बाह्य स्थान निर्थक है।

५. ध्यान सरोवर अमृत जल से भरा हुआ है। मुनिवर उसमें स्नान करते हैं और आठ कर्मों का मल धो डालते हैं इससे निर्वाण का पथ निकट हो जाता है।

६. त्रिवेणी में स्नान करना और सागर में झंपापात करना निरर्थक है। ध्यानाग्नि से कर्म मल जला देना चाहिये।

७. शास्त्र पठन और अचेतन मूर्ति का पूजन निरर्थक है।

८. कोई व्रत,तप, संयम, शील और महाव्रतों का पालन करे तो भी यदि परमकला को न जाने तब तक संसार भ्रमण करता रहता है।

९. केशलोच, जटाधारण वगैरहा निरर्थक है। एक आत्म ध्यान ही भव के पार ले जाता है।

१०. दर्शन और ज्ञान के बिना परिषह सहना निरर्थक है।

११. तिथी भोजन, पानीपात्र भोजन आदि भी आत्म ध्यान के बिना यमपूरीके वास से बचा नहीं सकते।

१२. बाह्य लिंग निरर्थक है। आत्मध्यान से ही शिवपूरी में वास होता है।

१३. आत्मदेव के चिंतन बिना जिन पूजा, गुरु स्तुति और शास्त्राध्ययन निरर्थक है।

१४. जो सिद्धों का ध्यान धरता है वह निर्वाण पाता है।

१५. जिन भी तारक नहीं बन सकते। आत्मा को स्वयं प्राप्त करना होता है।

१६. जेसे काष्ट में अग्नि और पुष्प में परिमल रहता है वैसे देह में जीव रहता है।

१७. जो शिव देव है वह बंध, मल पाप और पूण्य से परे है।

१८. हरि, हर, ब्रंह्मा भी, किसीकी मन और बुद्धि भी उसको जानते नहीं। वह शरीर

में बसता है और गुरुकृपा से जाना जाता है।

१९. जीव स्पर्श, रूप आदि से रहित है। शरीर से भिन्न है। सद्‌गुरु से उनका ज्ञान मिलता है।

२०. सचेतन देव का एक समय का ध्यान भी कर्म पुवाल को जला देता है।

२१. जप, तप आदि कर्मों का नाश नहीं कर सकते। एक समय का आत्मज्ञान भी चार गति से मुक्त करता है।

२२. सहज समाधि में आत्मा को जानना। उसमें ही अहंकार का त्याग करना।

२३. आत्मा ही संयम, शील, गुण, दर्शन, तप व्रत, देव और गुरु है। वही निर्वाण का पथ है।

२४. आत्मज्ञान ही सच्चा व्यवहार है। सम्यक्त्वके बोध से रहित होना यह कण बिना पुवाल लेने जैसा है।

२५. वह माता, पिता, कुल जाति रोष राग आदि से रहित है। वह सम्यक्त्व दृष्टि से और गुरु की कृपा से जाना जाता है।

२६. गुरु का उपदेश है कि जो मुनि परमानंद सरोवर में प्रवेश करता है वह अमृत रूपी महारस पीता है।

२७. चक्रवर्ती सब देशों पर आधिपत्य स्थापित करता है। फिर जो ज्ञानबल से विजय पाता है वही शिवपूरी को जाता है।

२८. सद्‌गुरु के उपदेश से परमानंद के स्वभाव का ज्ञान होता है। और फलस्वरूप परमज्योति उल्लस होता है।

२९. ... ...

३०. जैसे सिंह हाथी के कुंभस्थल पर प्रहार करता है वैसे ही परम समाधि साधना।

३१. जो समरस के भाव से रंगा हुआ है सो आत्मा को देखता है। जो आत्मा को जानता और उसके अनुभव करता है उसको कोई दूसरा आलंबन की आवश्यकता नही होती।

३२. जो पूर्व कर्मों को जलादेता है नये कर्म नहीं बांधता है, आत्मलीन होता है। वह केवलज्ञान पाता है।

३३. ब्रह्मा, मुरारि, इन्द्र, फणीन्द्र, चक्रवर्ती सब उसको वन्दन करता है ।

३४. गुरुकृपा से केवलज्ञान होता है। सचराचर का ज्ञान होता है, सहज स्वभाव में स्थिर रहा जाता है ।

३५. यदि सद्गुरु प्रसन्न हो तो मुक्ति पाई जाती है तो उसका ध्यान धरना ।

३६. गुरु जिनवर है, गुरु सिद्ध है, गुरु तीन व्रतों का सार है क्योंकि वह आत्मा और पर का भेद बताता है। जिससे भवजल को पार किया जाता है ।

३७. पाषाण की पूजा मत करना, तीर्थ भ्रमण मत करना, सचेन्द्र देव की पूजा करना। सद्गुरु उसका रहस्य बताता है ।

आणंदा Text

१. चिदाणंदु साणंदु जिणु, सयल-सरीरहि सोइ ।
महाणंदि सो पूजियइ, आणंदा रे गयण-मंडलि थिरु होइ ॥

२. अप्पु णिरंजणु अप्पु सिउ, अप्पा परमाणंदु ।
मूढ कुदेउ ण पूजयइ, आणंदा रे गुरु-विणु भूलउ अंधु ॥

३. अठसठि तिथ परिब्भमहि, मूढा मरहि भवंतु ।
अप्पा वंदि ण जाणहि, आणंदा रे घट-महि देउ अणंतु ॥

४. भींतरि भरियउ पाव-मलु, मूढा करहि सणाणु ।
जे मल लगा चित्त-मंहि आणदा रे ते किम जाय वखाणु ॥

५. झाणु सरोवरु अमिउ जलु, मुणिवरु करइ सणाणु ।
अठ कम्म-मलु धोवइ आणंदा रे णियडा पह-णिव्वाणु ॥

६. वेणी-संगमि जि ण मरहु, जलणिहि झंप म देउ ।
झाणग्गिहिं तुण जालि करि आणंदा रे कम्म-पडल खउ णेहु ॥

७. सत्थु पढंतउ मूढ जय, पालइ जण-विवहारु ।
काइं अचेयणु पूजियइ आणंदा रे नाही मोक्ख-दुवारु ॥

८. वउ तउ संजमु सीलु गुणु, सहइ महव्वय भारु ।
एक्कु ण जाणइ परम कल, आणंदा रे भमियइ बहु संसारु ॥

९. केई केस लुंचावहि, केई सिरि जड भारु ।
अप्पा बिंदु ण झायहिं आणंदा रे किम पावहिं-भव पारु ॥

आणंदा अनुवाद

१. हे आनन्द, आनंद स्वरूप, चिदानन्द जिन वे ही सबके शरीर में होते हैं। वे गगन मंडल में स्थिर होते हैं। महानन्दी उनकी पूजा करता है।

२. हे आनन्द, स्वयं आप ही निरंजन है, आप ही शिव है, आप ही परमानन्द रूप है। हे मूढ तू गुरु के बिना भूला भटका अन्ध है। मिथ्यादेव की पूजा मत करना।

३. हे आनन्द, तू मूढ होने से अडसठ तीर्थों में घूमता फिरता मर रहा है। स्वयं आत्मा जो देव है उसकी वन्दना नहीं करता है। अनन्त-देव तेरे शरीर में ही रहा है।

४. हे आनन्द, हे मूढ तेरे भीतर तो पाप का मल भरा हुआ है। और तू स्नान कर रहा है। (और तू शुद्धि के लिये स्नान कर रहा है) जो मल चित्त में लगा है वह स्नान से कैसे नष्ट होता है।

५. हे आनन्द, ध्यान रूप सरोवर अमृत जल से भरा है। मुनिवर उसमें स्नान करते हैं। वे आठ कर्मों का मल धो डालते हैं। और उनके लिये निर्वाण का पथ निकट आ जाता है।

६. हे आनन्द, त्रिवेणी संगम में जाकर मत मरो। समुद्र में मत कुद पडो। ध्यान रूप अग्नि से शरीर को जलाकर कर्म-पटल का क्षय करो।

७. हे आनन्द, लोक व्यवहार का पालन करता हुआ मूढ शास्त्र पढता है और अचेतन मूर्ति की पूजा करता है इससे मोक्ष का द्वार नहीं खुलता।

८. हे आनन्द, यदि कोई व्रत, तप, संयम, शील गुण आदि का पालन करे, महाव्रतों का बोझ उठावें तो भी जो वह एक परमकला को (सहज समाधि को) नहीं जानता है तो संसार में बहुत समय तक भ्रमण करता रहता है।

९. हे आनन्द, कई लोग केश लोच करते हैं। कई सिर पर जटा का भार धारण करते हैं किन्तु यदि वे आत्मा(?) का ध्यान नहीं करते तो कैसे संसार को पार कर सकते हैं।

१०. तिण्णि काल बाहिरि वसहिं, सहहिं परिसह-भारु ।
दंसण-णाणह बाहिरउ आणंदा रे भारिसि एउ जमु कालु ॥

११. पक्खि मासि भोयणु करहिं, पाणिअ-गासु निरासु ।
अप्पा झायहिं ण झाणहिं, आणंदा रे तिहं जमपुरि वासु ॥

१२. बाहिर लिंग धरेवि मुणि, तूसहिं मूढ णिचिंतु ।
अप्पा एक्कु ण झायहिं आणंदा रे सिवपुरि णाहि णिभंतु ॥

१३. जिणवरु पुज्जहिं गुरु थुणहिं, सत्थहं माणु करेहिं ।
अप्पा देउ ण चिंतवइं, आणंदा रे ते णर जमपुरि जाहिं ॥

१४. जो णर सिद्धहं झाइयहिं, अरि जिणन्ति झाणेहिं ॥
मोक्खु महापुरु णियडउ, आणंदा रे भव-दुह पाणिउ देहिं ॥

१५. जिणु असमत्थु वि मुणि भणहिं, तारण-मल्लु न होइ ।
मारगु तिहुयणि अक्खियउ, आणंदा रे अप्पा करइ सु होइ ॥

१६. जिम वइ साणरु कठ महि, कुसुमहिं परिमलु होइ ।
तिम देहहि जिउ वसहि आणंदा रे विरल बुज्झइ कोइ ॥

१७. बंध-विहूणउ देउ सिउ, णिम्मलु मलहिं विहीणु ।
कमलिणि-दलि जल-बिंदु जिम, आणंदा रे णवि तसु पावउ ण पुण्णु ॥

१८. हरि हरु बंभु वि सिउ णही, मन-बुधि ही लखिउ(?) ण जाइ ।
मज्झे सरीरह सो वसइ, आणंदा रे लिज्जइ गुरुहु पसाइ ॥

१०. हे आनन्द, जो तीनों समय अपने से बाहर बसते हैं, परिषह का बोझ सहते हैं, तो भी दर्शन और ज्ञान से बाहर होने से उनको काल रूपी यम मार डालेगा।

११. हे आनन्द, जो (मुनि) पक्ष में अथवा मास में एक बार भोजन करते हैं, जो पाणीपात्र हैं (हथेली में से ग्रास लेते हैं) जो आशा रहित हैं (किन्तु जो आत्मा का ध्यान नहीं करते उनको यमपुरी में वास होता है।

१२. हे आनन्द, जो मूढ मुनि बाह्य लिंग धारण करके निश्चित रूप से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु केवल आत्मा का ध्यान नहीं धरते उनके लिये सिवपुरी नहीं है, यह निश्चित है।

१३. हे आनन्द, जो लोग जिनवर को पूजते हैं, गुरु की स्तुति करते हैं, शास्त्र का सम्मान करते हैं, फिर भी यदि देव स्वरूप आत्मा का चिंतन नहीं करते हैं वे यमपुरी जाते हैं।

१४. हे आनन्द, जो लोग सिद्धों का ध्यान करते हैं और ध्यान से (कर्म रूपी)शत्रुओं पर विजय पाते हैं उनके लिये मोक्ष महापुर निकट होता है। वे भव के दुःखों को तिलांजलि देते हैं।

१५. हे आनन्द, मुनिवर कहते हैं जिन भी असमर्थ है, उनका किसी को तारने का सामर्थ्य नहीं है। यह मार्ग त्रिभुवन में कहा गया कि (आप स्वयं)जो करते हैं वही होता है।

१६. हे आनन्द, जैसे अग्नि काष्ठ में व्याप्त रहती है, पुष्पों में परिमल रहता है वैसे ही देह में जीव बसता है इस बात को कोई विरला समझता है।

१७. हे आनन्द, शिव (परमात्मा) देव बंध रहित होते हैं, वे निर्मल है, मल रहित है। कमलपत्र पर रहते जल बिंदु की तरह उनको न पाप का स्पर्श होता है न पुण्य का।

१८. हे आनन्द, हरि, हर और ब्रह्मा भी शिव (परमात्मा) नहीं है वह मन या बुद्धि से देखा नही जा सकता। अपने शरीर में ही उनका वास है, गुरु कृपा से उनका दर्शन होता है।

१९. फास-गंध-रस बहिरउ, रूव-विहूणउ सोइ ।
जीउ सरीरह भिणु करि, आणंदा रे सदगुरु जाणइ सोइ ॥

२०. देउ सचेयणु झाइयइ तज्जिय परु विवहारु ।
एक समइ झाणणालेण आणंदा रे दज्झइ कम्म-पयालु ॥

२१. जावु जवइ बहु तवइ, तो वि ण कम्म हणेइ ।
एकु समउ अप्पा मुणइ, आणंदा रे चउगइ पाणिउ देइ ॥

२२. सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, अण्णु करि परिहारु ।
सहज-समाधिहिं जाणियइ आणंदा रे जो जिण-सासण सारु ।

२३. अप्पा संजम-सील-गुण, अप्पा दसणु णाणु ।
वउ तउ संजमु देउ गुरु, आणंदा रे अप्पा पहु णिव्वाणु ॥

२४. परमप्पउ जो झाइयइ, सो सचउ विवहारु ।
समकित बाह बाहिरउ आणंदा रे कण-विणु गहइ पयालु ॥

२५. माय-बप्प-कुल-जाति-विणु, णउ तसु रोसु ण राउ ।
सम्मा-दिठिहि जाणियइ, आणंदा रे सदगुरु करइ सुभाउ

२६. परमाणंद-सरोवरहिं, जो मुणि करइ पवेसु ।
अमिय-महारसु सो पिबइ, आणंदा रे गुरु-सामिहि उवएसु ॥

२७. महि साहहिं रमणिहिं रमहिं, जो चक्काहिवु होइ ।
णाण-वलेण जिणेवि मुणि, आणंदा रे सिवपुरी-णियडउ सोइ ॥

१९. हे आनन्द, परमात्मा स्पर्श गन्ध, और रस के बाह्य है, वह रूप रहित है, जीव को शरीर से भिन्न समझ । सदगुरु परमात्मा को जानते हैं ।

२०. हे आनन्द, दूसरा सब व्यवहार का त्याग करके सचेतन देव का ध्यान कीजिये क्योंकि एक ही समय में ध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी पयाल जल जाता है ।

२१. हे आनन्द, कोई झाप झपता है, बहुत तप करता है तो भी वह कर्म को नष्ट नहीं कर सकता किन्तु जो एक समय के लिये भी आत्मा को जानता है वो चार गति को तिलांजलि देता है ।

२२. हे आनन्द, हे जीव अन्य सबका त्याग करके तू उस आत्मा को जान वह सहज समाधि में जाना जाता है । यही जिन-शासन का सार है ।

२३. हे आनन्द, आत्मा ही संयम और शील के गुण है । आत्मा ही दर्शन और ज्ञान है, आत्मा ही व्रत है, तप है, संयम है, देव है, गुरु है । आत्मा ही प्रभु है और निर्वाण है ।

२४. हे आनन्द, परमात्मा का जो ध्यान किया जाता है वह ही सच्चा व्यवहार है । जो सम्यक्त्व ज्ञान से बाहर रहता है सो धन्य, कण पाने के बिना मात्र पुआलै ग्रहण करता है ।

२५. हे आनन्द, जो माता पिता कुल और जाति के रहित है उसको न तो रोष होता है न तो राग । सब सम्यक् दृष्टि से जानना चाहिये । यह सदगुरु का स्वभाव है ।

२६. हे आनन्द, जो मुनि परमानंद के सरोवर में प्रवेश करता है सो अमृत रूपी महारस का पान करता है । यह गुरु स्वामी का उपदेश है ।

२७. हे आनन्द, जो चक्रवती होता है वो पृथ्वी को जीतता है और रमणियों के साथ रमण करता है । इसी तरह मुनि ज्ञान के बल से सब जीत कर सिवपुरी के निकट पहुँचता है ।

२८. सिक्खु सुणइ सदगुरु भणइ, परमानंद-सहाउ ।
परम जोइ तसु उल्लसइ, आणंदा रे करइ जु णिम्मलु भाउ ॥

२९. इंदिय

३०. गय-कुंभ-थलि जेम दिढु, केसरि करइ पहारु ।
परम-समाहि म भुल्लहि, आणंदा रे रहियउ णिरहंकारु ॥

३१. समरस भावे रंगियउ, अप्पा देक्खइ सोइ ।
अप्पउ जाणहि अणुहवइ आणंदा रे करइ णिरालंबु होइ ॥

३२. पुव्व-किय कम्म णिज्जरइ, णवा ण होणहं देइ ।
अप्पा तासु ण रंगियइ, आणंदा रे केवलणाणु हवेइ ॥

३३. देव बजावहिं दुंदुहिं, थुणइ जो बंभु मुरारि ।
इंदु फणिंदु वि चक्कवइ, आणंदा रे केवल णाणुवि उपज्जंइ ॥

३४. केवलणाणु वि उप्पजइ, सदगुरु वचन पसाइ ।
जगु सचराचरु सो मुणइ, आणंदा रे रहिउ ज सहज सुभाइ ॥

३५. सदगुरु तूठइ पावयइ, मुति-तिया-घर-वासु ।
सो गुरु णितु णितु झाइयइ, आणंदा रे जा लइ हिये उसासु ॥

३६. गुरु जिणवरु गुरु सिद्धु सिउ, गुरु-रयण-त्तय-सारु ।
सो दरिसावइ अप्पु परु, आणंदा रे भव जल पावहि पारु ॥

३७. पाहण पूजि म सिरु धणहु, तीरथ काइं भमेहु ।
देव सचेयणु सच्चु गुरु, आणंदा रे जो दरिसावइ भेह ॥

२८. हे आनन्द, सदगुरु परमानंद का स्वभाव बताते हैं और शिष्य यह सुनता है। इस तरह जो शिष्य अपना भाव निर्मल करता है उसके लिये परम ज्योति उल्लसित होती है।

२९. ... ...

३०. हे आनन्द, जैसे केसरि सिंह हाथी के व्रज गंडस्थल पर प्रहार करता है वैसे निरहंकार रहकर (अहंकार का विनाश करके) परम समाधि को मत भूल।

३१. हे आनन्द, जो समरस भाव से रंगा हुआ है वही आत्मा को देख सकता है। वह आत्मा को जानता है उसका अनुभव करता है और आलंबन रहित होता है।

३२. हे आनन्द, पहले किये कर्मों की जब निर्जरा करता है और नये कर्म नहीं होने देता उसकी आत्मा को रंग नहीं लगता और उसको केवलज्ञान प्राप्त होता है।

३३. हे आनन्द, जो देव दुंदुंभि बजाते हैं, जो ब्रह्मा और विष्णु की स्तुति करता है। इन्द्र नागेन्द्र और चक्रवर्ती...

३४. हे आनन्द, सदगुरु के उपदेश की कृपा से केवलज्ञान भी उत्पन्न होता है। जो सहज स्वभाव में रहता है वह सचराचर विश्व को जानता है।

३५. हे आनन्द, सदगुरु तुष्ट दोने से मुक्ति रूपी स्त्री के गृह में निवास प्राप्त होता है। इसलिये वैसे गुरु का नित्य नित्य ध्यान करना चाहिये, जब तक हृदय के श्वासोच्छ्वास चलते हैं।

३६. हे आनन्द, गुरु जिनवर हैं, गुरु सिद्ध हैं, गुरु शिव हैं, गुरु रत्नत्रय का सार हैं। वे आत्मा और पर का ज्ञान बताते हैं जिससे तू भवजल को पार करेगा।

३७. हे आनन्द, पाषाण की पूजा करके मस्तक मत धुनाओ। तीर्थों में क्यों भ्रमण करते हो। देव सचेतन होता है, यह सच्चा भेद गुरु बताते हैं।

३८. सुणइ सुणावइ अणुभवइ, सो णरु सिवपुरि जाइ ।
कम्म-हणणु भव-णिद्दलणु, आणंदा रे भवियणु हियइ समाइ ॥

३९. सुणतह हियडउ कलमलइ, मत्थए उपजइ सोगु ।
अणक्ख बढइ बहु हियइ, आणंदा रे मिच्छादिट्ठी-जोगु ॥

४०. सुणतहं आणंद उल्लसइ, मत्थए णाण-तिलक्क
मुकुट-मणिहि सिरु सोहयइ आणंदा रे गुरु गुपाला हु-जोगु ॥

४१. हिंडोला-छंदे गाइयउं, आणंदतिलकु जि णाउ ।
महाणंदि दिक्खालियउ, आणंदा रे अउं हउं । सिवपुरी जाउं ॥

४२. बलिकिज्जउ गुरु अप्पणउ, फेडिउ मण-संदेहु ।
विणु तेल्लहिं विणु वत्तयहिं आणंदा रे जिण दरिसाइउ एहु ॥

४३. सदगुरु वाणिहि जउ हवउ, भणहि महाणंददेव ।
सिवपुरी जाअइ जाणियइ, आणंदा रे करहि चिदाणंद-सेव ॥

३८. हे आनन्द, जो (सच्चा धर्म) सुनता है, सुनाता है, उसका अनुभव करता है सो सिवपुरी जाता है। कर्मों का विनाश करने वाला भव को नष्ट करने वाला भव्यजन का हमारे हृदय में स्थान है।

३९. हे आनन्द, मिथ्यादृष्टि के सम्पर्क से उसको सुनते ही हृदय व्याकुल होता है, मस्तिष्क में शोक उपजता है, हृदय में अत्यन्त क्रोध या अस्वस्थता बढ़ती है।

४०. हे आनन्द, जिनके उपदेश सुनकर आनन्द उल्लसित होता है, जिसके भाल पर ज्ञान तिलक है और मस्तक मुकुट मणि से शोभता है। वे गुरु शिष्यों के लिये गोपालक जैसा। (हित रक्षक) है।

४१. हे आनन्द, जिसका आनन्द तिलक नाम है उसने यह (काव्य) हिंडोला छंद में गाया है (रचा है) महाणंदि (गुरु ने दिखलाए मार्ग से) अब मैं सिवपुरी जा रहा हूँ।

४२. हे आनन्द, मैं अपने गुरु पर बलिदान दिया जाता हूँ (उनका मैं बलिहारी हूँ) जिन्होंने मन का सन्देह टाल दिया है। जिन्होंने यह (प्रकाश) बिना तैल और बिना बत्ती किया है।

४३. हे आनन्द, महानंदी देव कहते हैं कि सदगुरु की वाणी का जय हो, जिसको जानने से (जानने वाला) सिवपुरी जाता है और चिदानंद की सेवा करता है।

कुछ दोहें पर टिप्पण

'क' और 'ख' प्रति के अनुसार हमें 'आणंदा रे' यह ध्रुवपद चौथे चरण में आरंभ में रखा है। हिंदी में जब शब्द के प्रथम दो अक्षरों में उत्तरोत्तर दीर्घ स्वर (अथवा दूसरा अक्षर सानुस्वार होता है तब प्रथमाक्षर का मूल दीर्घ स्वर ह्रस्व करने की 'ए' का 'इ' और 'ओ' का 'उ' करने की वृत्ति है। जैसे कि खेलना-खिलाना, बोलना-बुलाना इत्यादि। इसके अनुसार 'आणंदा' के लिये 'अणंदा' प्रतियों में मिलता है।

१. गगनमंडलि थिरु होई :- तुलनीय : अंबरि जाहं णिचासु (पप. २, १६३, दो. १४); जो आयासइ मणु धरइ (पप. २, १६४); अंबरि रामरसि मणु धरिवि (पप. २, १६५). अंबर, गगन=रागादि शून्य निर्विकल्प समाधि (पप. ब्रह्मदेवकृत टीका)

४. तुलनीय दोपा. १६२-१६३

११. मुद्रित में बिल्कुल उल्टा अर्थ किया गया है और पाठ में भी अशुद्धि है।

१२. दोनों अन्तिम स्थान पर 'णिभंतु' है वो गलत है। नाहटाजी के पाठ में 'णिर्चितु' है।

१३. मुद्रित पाठ में बहुत से स्थान पर बहुवचन के बदले एक वचन का पाठ मिलता है।

२०. चौथा चरण का पाठान्तर है- 'धगधग' N. कम्म पयारु

तीसरे चरणका पाठान्तर S. 'एकु समउ झाणे रहहिं'

२१. 'पाणि ण देइ'

२३. चौथे चरण का पाठान्तर N. में 'ते पावहि णिव्वाणु'

२८. चौथा चरण का पाठान्तर 'रहइ सहज सुभाउ'

३१. पाठान्तर 'अणुहवइ' के स्थान पर 'पर हणइ' तथा चौथा चरण में 'करइ'

३७. चौथे चरण के पाठान्तर में 'गोपाल हिय समाइ' ऐसा है। आगे के पद में भी चौथे चरण मे 'साहि गोपाल...' नाहटाजी की प्रति में भी यही पाठान्तर है।

३९. मुद्रित पाठ में जो ३९ वां दोहा है वह 'क' प्रति में ३० के बाद दिया गया है और हमारी दृष्टि से यह सुसंगत है। तुलनीय दोपा. १ (ed. अप्पापरहं पंरपरहं जो दरिसावइ भेउ.

४०. दोहें में कवि ने परंपरा के अनुसार अपना नाम श्लेष का प्रयोग कर सूचित किया है। प्रथम चरण में 'आणंदु' शब्द है और दूसरे चरण के अंत में 'तिलक्कु'।

४१. 'आणंदतिलकु जि णाउ' के साथ मिलाइए 'परमात्मप्रकाश' का निम्नलिखित चरण सिरि जोइंदु जि णाउ (पप्र. १/८)

जैसे जोइंदुने अपना नाम निर्देश किया वैसा 'आणंदा' का कविने किया है। हम समझते है कि दोनों स्थान पर 'जि' बलवाचक 'जे' (=सं. एव) नहीं है किन्तु उत्तरकालीन आदरवाचक 'जी' का पूर्वरूप है। (जो भट्टोजी दीक्षित आदि में है।) उसका प्राचीन रूप 'जिउ' (=सं. जीव) था जो जो आशीर्वाद दर्शक था।

४२-४३. अंतिम दो दोहे में गुरुस्तुति की गई है। तुलनिय दो.पा. ? (ed. अप्पापरहं -परंपरहं जो दरिसावइ भेउ)

दोहानुक्रमणिका

अठसठि तिथ परिब्भमहि
अप्पा संजम-सील-गुण
अप्पु णिरंजणु अप्पु सिउ
इंदिय-मणु विछोहियउ
केई केस लुंचावहि
केवलणाणु वि उप्पजइ
गय-कुंभ-थलि जेम दिट्ठु
गुरु जिणवरु गुरु सिद्धु सिउ
चिदाणंदु साणंदु जिणु
जावु जवइ बहु तवइ
जिणवरु पुज्जहिं गुरु थुणहिं
जिणु असमत्थु वि मुणि भणहिं
जिम वइ साणरु कठ महि
जो णर सिद्धह झाइयहिं
झाणु सरोवरु अमिउ जलु
तिण्णि काल बाहिरि वसाहिं
देउ सचेयणु झाइयइ
देव बजावहिं दुंदहिं
पक्खि मासि भोयणु करहिं
पाहण पूजि म सिरु धणहु
परमप्पउ जो झाइयइ
परमाणंद-सरोवरहिं
पुव्व-किय कम्म णिज्जरइ
परमाणंद-सरोवरहिं
फास-गंध-रस बाहिरउ
भींतरि भरियउ पाव-मलु
बलिकिज्जं गुरु अप्पणउ
बंध-विदूणउ देउ सिउ
बाहिर लिंग धरेवि मुणि
भाय-बप्प-कुल-ज्ञाति-विणु
महि साहहिं रमणिहिं रमहिं
बउ तउ संजमु देउ गुरु
वेणी-संगमि जि ण मरहु
सदगुरु वाणिहि जउ हवउं
सिक्ख सुणइ सदगुरु भणइ
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं
सुणइ सुणावइ अनुभवइ
सुणतह हियडउ कलमलइ
सुणतह आणंद उल्लसइ
सद्गुरु तूठइ पावयइ
सत्थु पढंतउ मूढ जय
समरस भवि रंगियउ
हरिहरु बंभु दि सिउ णही
हिंडोला-छंदे गाइयउं

Pārśva International Series

१. बारहक्खर-कक्क of महाचंद्र मुनि 1997
Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi

२. गाथामंजरी Ed. H. C. Bhayani 1998

३. दोहाणुपेहा
Pritam Singhvi 1998

४. अनेकान्तवाद : Pritam Singhvi

५. सदयवत्स-कथानक of Harṣavardhanagaṇi 1999
Ed. Pritam Singhvi

६. आणंदा of आनंदतिलक 1999
Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi.

७. दोहापाहुड 1999
Ed. H. C. Bhayani, R. M. Shah,
Pritam Singhvi